वर्तमान समय में गीता में वर्णित कर्मयोग की उपादेयता

आराधना कनौजिया*, डॉ० भोलानाथ मौर्य**

सार- श्रीमद्भगवद्गीता भारत का प्राचीन एवं पवित्र धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें समस्त वेद, पुराण, उपनिशद, षट्दर्शन का सार समाहित है। यह एक पूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें ज्ञानियों का ज्ञान है, योगियों का योग है, भक्तों के लिए भक्ति है, और कर्मशीलों का कर्तव्यबोध है। यह श्रेष्ठ जीवन की कुंजी, आदर्श जीवन का मार्ग है, सृष्टि रचना का विज्ञान है।

काल- 'मेगस्थनीज' के अनुसार श्री कृष्ण ईसा से 3072 वर्ष पूर्व हुए थे और ईसा से अब तक 2022 वर्ष बीत चुके हैं इसलिए श्री कृष्ण आज से 3072$2022= 5094 वर्ष पूर्व हुए अतः यह गीता का काल है।

शब्द कुंजी- गीता, निष्काम कर्म, कर्म योग

Ethical clearance- not applicable **conflict of author-** None

परिचय- श्रीमद्भगवद्गीता को गीता क्यों कहते है 1- श्रीमद्भगवद्गीता में उपनिषदों का सार संग्रहीत है इसलिए महर्षि वेदव्यास जी ने इसे श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् भी कहा है। श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् का संधि विच्छेद करे तो श्रीमद्भगवद्गीत$उपनिषद् होता है। इसमें 'गीत' का शब्द रूप 'नपुंसकलिंग' है और 'उपनिषद्' का शब्द रूप 'स्त्रीलिंग' है। अतः 'उपनिषद्' शब्द 'स्त्रीलिंग' है इसलिए उसका विशेषण होने से 'गीता' शब्द 'स्त्रीलिंग' हो गया। इसलिए इस ग्रन्थ को श्रीमद्भगवद्गीता कहा जाता है। गीता में 18 अध्याय एवं 700 श्लोक है। गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग कहा जा सकता है। गीता का प्रतिपादन निष्क्रिय और किंकत्र्तव्यविमूढ़ अर्जुन अपने कर्तव्य कर्म का ज्ञान कराने के उद्देश्य से की गई है।

कर्मयोग- 'कर्म' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा 'कृ' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है- 'कार्य करना'। कर्म का परिभाषित अर्थ है- 'कर्मफल'।

''वह विधि जो हमें अपने कर्मो का ज्ञान कराती है, 'कर्मयोग' कहलाती है''2

कर्मयोगी द्वारा प्रत्येक कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं, गीता में कहा गया है-

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।

तस्माद्योगाय युजस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।3 (गीता- 2/50)

बुद्धिमान मनुष्य संसार के सुकृत और दुष्कृत दोनों प्रकार के कर्मो के आसक्ति को त्याग देता है ऐसे ही कर्मों के लिए प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि ये कुशल कर्म ही योग कहलाते हैं। कर्मों में कुशलता का अर्थ यह है कि वे बंधन का कारण न बन सकें। बल्कि मुक्ति दिलाने वाले हो सकें। छठे अध्याय में गीता में योग की परिभाषा देते हुए कहा गया है-

तं विद्याद् दुःखसंयोग वियोगं योगसञ्ज्ञितम्।।3 (गीता- 6/23)

* पी.एच.डी. शोधछात्रा, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

** पर्यवेक्षक**, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

अर्थात् वह विद्या जिससे दुःखों से पूर्णतया छुटकारा मिल जाये, उसे ही प्राप्त करना योग कहलाता है।

गीता में ज्ञान योगियों के लिए सांख्य तथा कर्मयोगियों के लिए योग का वर्णन किया गया है।3 (गीता- 2/50)

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुभूर्मा ते संडगोऽस्त्वकर्मणि।।4 (गीता- 2/47)

अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तु कर्मो के फल का हेतु ना बन तथा तेरी उसमें आसक्ति भी न हो। जब भी हम कोई कर्म यह सोच कर करते हैं कि उसका फल हमें मिलेगा या नहीं। तभी उस कर्म को करने में मिलावट आ जाती है और हम अपना शत् प्रतिशत् नहीं दे पाते। क्योंकि हमारा ध्यान फल भोगने की ओर लगा रहता है।

कोई मनुष्य या प्राणी बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रह सकता तथा सभी प्राणियों को अपनी योग्यता अथवा आवश्यकतानुसार कर्म करना पड़ता है। इसी क्रम में श्री कृष्ण जी कहते हैं-

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठव्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।5 (गीता- 3/5)

अर्थात् मनुष्य में कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। एक क्षण भी मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता। मनुष्य समुदाय प्रकृति के गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य है। मनुष्य इच्छा से करें, अनिच्छा से करे, स्वाभाव से करें अथवा कैसी भी वृत्ति से करें, उससे कर्म होना ही है। कुछ भी करो कर्म कभी छुटता ही नही। मनुष्य यदि निद्रावस्था में है तब भी वह निद्रा करने का कर्म कर रहा है। क्योंकि निद्रावस्था में मन के व्यापार बन्द नहीं होते विचारों का गमन होता रहता है। श्वास- प्रश्वास, उठना-बैठना, निमेषोन्मेष, हृदय की धड़कन एवं प्रत्येक अंतः क्रियाऐं अपने-अपने कर्मो का निर्वहन निरन्तर करती रहती हैं। अतः मनुष्य का कर्मो का प्रारम्भ करने का निश्चय एवं कर्मो के त्याग करने का निश्चय ये दोनों अव्यवहार्य हैं।

अब प्रश्न यह आता है कि हमें किस प्रकार के कर्म करने चाहिए जो मुक्तिदायक हो। गीता में कहा गया है-

कौन से कार्य करने चाहिये और कौन से कार्य नहीं करने चाहिये इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र प्रमाण हैं। इस विषय में शास्त्रों की राय जान कर उन्हीं के अनुसार कर्म करने चाहिए। गीता में कहा गया है कि यज्ञ दान एवं तप जैसे कार्य का शुभारम्भ वैदिक निर्देशों एवं 'ओम' के उच्चारण से करना चाहिए।6(गीता- 17/24)

इसी प्रकार गीता में कहा गया है- **नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।7 (गीता- 3/8)**

अर्थात् जिन कर्मो की आज्ञा शास्त्र देते है वहीं कर्म करने चाहिए। मन से इन्द्रियों का संयम करके अनासक्त भाव से कर्म करने वाले की प्रशंसा करते हुए गीता में कहा गया है-

यिस्त्वान्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगभसक्तः स विशिष्यते।।8 (गीता- 3/7)

जो पुरूष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है,

वही श्रेष्ठ है।

कर्म के प्रकार- गीता के चैथे अध्याय के सत्रहवें श्लोक में कर्मो के प्रकार के चर्चा की गई है जिनके बारे में जानना मुमुक्षुओं (अपना कल्याण चाहने वाले) के लिए अत्यधिक आवश्यक है-

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।।9 (गीता- 4/17)

अर्थात् कर्म की गति गहन हैं। हमें यह जान लेना चाहिए कि 'कर्म' क्या है? यह भी जान लेना चाहिए कि 'विकर्म' क्या है? यह भी जान लेना चाहिए कि 'अकर्म' क्या है?

कर्म के तीन भेद- कर्म, अकर्म और विकर्म। कर्म, अकर्म, विकर्म

सकाम भाव से किया गया शास्त्रविहित क्रिया 'कर्म' बन जाती है। कामना या इच्छा से ही कर्म होते हैं। ऐसे कर्मो का फल होता है जिसे अनिवार्य रूप से भोगना ही पड़ता है। फल की इच्छा, ममता और आसक्ति से रहित होकर केवल दूसरों के हित के लिए किया गया कर्म 'अकर्म' बन जाता है। निर्लिप्त रहते हुए कर्म करना अथवा कर्म करते हुए निर्लिप्त रहना यहि वास्तव में 'अकर्म' अवस्था है।शास्त्रविहित कर्म भी यदि दूसरों के अहित के उद्येश्य से किया जाय तो वह कर्म 'विकर्म' बन जाते हैं, इसे निषिद्ध कर्म भी कहते हैं।

गीता में कर्मो को दो भागों में विभाजित किया गया है-

1. सकाम कर्म- कर्मफल की इच्छा से किया गया कर्म सकाम कर्म कहलाता है।

2. निष्काम कर्म- कर्मफल में अनासक्त भाव से किया गया कर्म निष्काम कर्म कहलाता है।

कर्मयोग की श्रेष्ठता- गीता के पांचवे अध्याय में ज्ञान और कर्मयोग दोनों की विशेषताओं का वर्णन किया गया है जिससे अर्जुन को भ्रम हो गया कि इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

तब श्रीकृष्ण जी कहते हैं- **सन्नयासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।**
तयोस्तु कर्मसन्नयासात्कर्मयोगो विशिस्यते।।10 (गीता- 5/2)

अर्थात् कर्मसन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही परम कल्याणकारी हैं। परन्तु इन दोनों में भी कर्मसन्यास से कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है। जो अन्र्तमुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं उनके लिये कर्मसन्यास ही ठीक है किन्तु जो बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले है उनके लिये कर्मयोग ही श्रेष्ठ है। हे अर्जुन तू रजोगुणी प्रकृति वाला हैं इसलिए तेरी प्रवृत्ति स्वाभाव से ही कर्म की ओर है इसलिए कर्मसन्यास से तुझे सफलता नहीं मिलेगी। तेरे लिये कर्मयोग का मार्ग ही श्रेष्ठ है।

गीता में राग-द्वेष रहित कर्म करने की प्रेरणा- श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को राग-द्वेष रहित कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि राग-द्वेष लिप्त कर्म ही बन्धन का कारण बनते हैं। जिसका कारण अज्ञान है। इन्द्रियों को जो विषय है उसमें राग-द्वेष निश्चित होता हैं। जैसे- कान का विषय शब्द है, कान का राग मधुर शब्द और द्वेष कटु शब्द पर होगा। यही नियम अन्य इन्द्रियों पर भी लागू होता है। इन्द्रियों का मनुष्य के शत्रु है इनके वश में नहीं आना चाहिए।11 (गीता- 3/34)

आगे कृष्ण कहते हैं - **श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।**
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।11 (गीता- 3/35)

अपनी प्रकृति एवं अपने स्वाभाव के विरूद्ध किया गया 'परधर्म' से अपनी प्रकृति एवं अपने स्वाभाव के अनुकूल किया गया 'स्वधर्म' श्रेयस्कर हैं क्योंकि 'परधर्म' का पालन दूसरे की प्रकृति- स्वाभाव के अनुसार चलना बहुत भयावह हैं। क्योंकि मनुष्य की प्रकृति सत्, रज्, तम् गुणों से लिप्त होती है यदि मनुष्य की प्रकृति राजसिक है तो वह क्रियाशील रहता है यदि उसको सात्विक प्रकृति के गुणों की तरह शांत रहने को कहा जाए तो उसमें क्रोध उत्पन्न हो सकता है इसलिए जिसकी जो प्रकृति है उसके अनुरूप स्वधर्म का पालन करना चाहिए। अपनी प्रकृति के विपरीत कार्य करने से कार्य सिद्धि में बाधा आती है। राग-द्वेष से निर्लिप्त होकर निष्काम भाव से स्वधर्म का पालन करने से मनुष्य कर्म बन्धन से मुक्त हो सकता हैं।

सच्चा कर्मयोगी कौन- गीता में कर्मयोग के दो मार्ग है- 1. प्रवृत्ति मार्ग- वह मार्ग जिसमें मनुष्य संसार में रहकर अपने कर्तव्यों को करता हैं तथा भोगता है। 2. निवृत्ति मार्ग- वह मार्ग जिसमें मनुष्य सांसारिकता से विमुख होकर सन्यास ग्रहण करता है। इन दोनों मार्गो के आदर्शों का समन्वय स्थापित कर इन्हें कर्मयोग कहा गया जो मनुष्य अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर कर्मफल में अनासक्त भाव से कर्म करता है वहीं सच्चा कर्मयोगी है।[12]

अतः हम कह सकते हैं कि मानव जीवन में कर्म का विशेष स्थान है। कर्म ही मनुष्य के जीवन चक्र का आधार है। कर्म के आधार पर ही वर्तमान जीवन के साथ भविष्य का निर्माण संभव है। मनुष्य द्वारा किया गया अच्छा-बुरा कर्म ही जीवन की दशा व दिशा तय करता है।[13]

निष्कर्ष- जिस प्रकार अर्जुन के सामने उनके सम्बन्धियों के आ जाने पर वह व्याकुल होकर वह अपने कर्तव्य से डगमगा जाते हैं ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी ऐसी स्थिति से गुजरता है परन्तु गीता का कर्मयोग हमें अनासक्त भाव से कर्तव्य करने की सीख देता हैं अतः हम सभी को सर्वकल्याण के लिये मोह एवं स्वार्थ छोड़कर किसी भी फल की इच्छा से रहित होकर निष्काम कर्म करना चाहिए। जिस प्रकार अर्जुन रजोगुणी है उसी प्रकार धरती का अधिकांश मनुष्य भी रजोगुणी ही है अतः उन सभी के लिए कर्मयोग ही श्रेष्ठ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. https://www.vedicaim.com
2. श्रीमती बाली रजनी, डॉ. प्रीतम अमृता, योग परिचय एवं परम्परा, 2007, खेल साहित्य केन्द्र। पृष्ठ सं 46, 47
3. गीता, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं0 40, 90, 48
4. गीता, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं0 39
5. तिवारी डॉ0 पण्डित दीपक राज, तिवारी डॉ0 शशि, तिवारी डॉ0 ईशान राज, अद्भुत श्रीमद्भगद् गीता, 2019 2019 Book sclinic, Publishing Bilaspur, Chhattisgarh, पृष्ट सं0 95 ISBN: 978-93-88797-42-91
6. https://www.holy-bhagvad-gita.org/chapter/17
7. कुमार डॉ0 कामाख्या, योग महाविज्ञान, 2011, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इण्डिया) पृष्ठ सं0 109

8. गीता, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं0 50
9. सम्पूर्ण गीता गीता सार भाग-2, पृष्ठ सं0 12
10. गीता, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं0 75
11. स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी, श्रीमद्भगद् गीता (यथार्थ गीता) मानव-धर्म शास्त्र श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट मुम्बई। पृष्ठ सं0 86, 87
12. राष्ट्र गौरव एवं भारतीय चिंतन, SBPD Publishing House पृष्ठ सं0 120 ISBN: 978-93-5047-496-9, Book code: 5105
13. कुमार राधा कृष्ण, धर्म, योग और आध्यात्म का सार, 2022, Published by Zorba Books पृष्ठ सं0 71, ebook ISBN-978-93-93029-97-3